वीर संवत २४९२, फाल्गुन शुक्ल ३, बुधवार

दि. ०९-३-१९६६, ढाल-५, श्लोक-१४,१५. प्रवचन नं. ४६

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है, पाँचवी ढाल, उसकी बारहवीं भावना है, गाथा-१४। बोधिदुर्लभ भावना हो गयी। बारह भावना में यह अन्तिम भावना है। भावना अर्थात् क्या ? कि आत्मा का स्वभाव शुद्ध है-ऐसी दृष्टि हुई हो, उस शुद्धता के चारित्रगुण की यह संवर की पर्यायें हैं। बारह भावना संवर है न संवर ! उसमें आती है-बारह भावना आती है न ? 'तत्त्वार्थसूत्र' मे। यह संवर की शुद्धि की दशा है। आत्मा में सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध दृष्टि हुई है; पश्चात् यह भावना

भावे, तब अधिक शुद्धि होती है, इसलिये 'तत्त्वार्थसूत्र' में इन्हें संवर में रखा है न ? बारह भावना। ग्यारह हुई, बारहवीं है।

जो भाव मोहतैं न्यारे, दग-ज्ञान-व्रतादिक सारे;
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे।।१४।।

देखो ! यह बारहवीं (भावना की) अन्तिम कड़ी। अन्वयार्थ :- '**मोह से (न्यारे)...**' इस शब्द में बात पड़ी है, देखो ! आत्मा में सम्यग्दर्शन हो, वह दर्शनमोह-मिथ्यात्वभाव से रहित होता है। और स्वरूप में चारित्र होता है, वह भी राग-द्वेष और अचारित्र से रहित होता है। समझ में आया ?'**जो भाव मोहतैं न्यारे...**' मोह शब्द से मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष परिणाम, इनसे जो भाव पृथक् है, उसे दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहा जाता है। समझ में आया ?

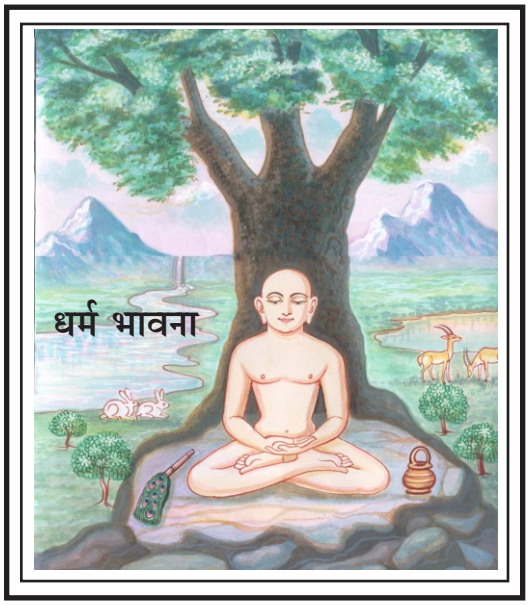

'**जो भाव मोहतैं न्यारे...**' आत्मा शुद्ध चैतन्य की अन्तर सावधानी से किया हुआ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-ये तीनों भाव '**जो भाव मोहतैं न्यारे...**' मोह से भिन्न हैं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह मोक्ष का मार्ग-वह भाव, मोह से पृथक् है। समझ में आया या नहीं ? यह बारह भावना तुमने कितनी बार रटी है ?

'**जो भाव मोहतै न्यारे...**' ऐसा है। जिसमें पर तरफ की सावधानी का भाव, मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष से रहित स्वरूप की तरफ दृष्टि की सावधानी और स्थिरता यह भाव, मोह से पृथक् है। समझ में आया ?'**दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे...**' उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, सम्यग्ज्ञान कहते हैं। जो मोह से भिन्न तत्त्वश्रद्धान, अतत्त्वश्रद्धान से भिन्न। भाव। तत्त्वश्रद्धानभाव, अतत्त्वश्रद्धान से भिन्न। तत्त्वज्ञान, अतत्त्वज्ञान से भिन्न और तत्त्व की व्रतधार स्थिरता, वह अस्थिरता से भिन्न।

उसमें क्या आया ? व्रत में-चारित्र में राग आया या नहीं ?

यहाँ तो धर्मभावना (कहते हैं)। धर्म तो उसे कहते हैं कि जिसमें मोह का अभाव हो, अर्थात् स्वरूप की सावधानी का भाव हो-ऐसा यहाँ बारहवीं भावना में कहते हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा, जो अनन्त शान्ति और आनन्द की खान, आत्मा खान, उस ओर के भाव को मोहरहित भाव कहते हैं। वह दृग अर्थात् सम्यग्दर्शन (है)। देखो ! यहाँ निश्चय की बात है। मोह से न्यारा भाव अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, मोह से पृथक् ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान और व्रतादिक-मोह से न्यारे अर्थात् चारित्र-स्वरूप की रमणता, उसे यहाँ व्रतादिक कहा गया है। समझ में आया ?

मोह से पृथक् और स्वरूप से अभेद। समझ में आया ? मोहभाव से पृथक्, विकारीभाव से पृथक् और अविकारी स्वरूप आत्मा से अभेद-ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वे श्रेष्ठ हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं, वे ही भले हैं। कहो, समझ में आया ? वही साररूप मोक्षमार्ग है। जो 'नियमसार' (में) आया था न ? 'नियमसार'... 'नियमसार' में क्या आया था ? बस, लो ! देखो ! इस सेठ को याद रहता है। देखो ! 'नियमसार' आया था न ? नियम-निश्चय-मोक्षमार्ग और उसमें से सार अर्थात् विपरीतरहित। विपरीतरहित आया था या नहीं ? इन्होंने वह शब्द की शैली ली है। वह शब्द की शैली ली है, देखो न ! समझ में आया ? जो भाव, भगवान आत्मा की सावधानी से-स्वभाव की सावधानी से श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट हुए, वे तीनों पर सावधानी के भाव से रहित हैं, मोह से रहित हैं। समझ में आया ? यह तो 'छहढाला' है। सादी भाषा में-हिन्दी में है। इसके अर्थ का भी पता नहीं पड़ता। क्या सत्य है-इसकी दरकार नहीं होती।

दृग-ज्ञान ये '**(सारे) साररूप अथवा निश्चय...**' अथवा वही मोक्ष का मार्ग यथार्थ सार है। समझ में आया ? '**दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय आदि भाव हैं...**' फिर क्षमा आदि, निश्चय समिति, निश्चय गुप्ति-ये सब मोहभाव से न्यारे (हैं)। 'व्रतादिक' शब्द पड़ा है न ? सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान-चारित्र आदि-आदि में जितनी वीतरागी पर्याय-राग आदि में जितनी वीतराग पर्याय-राग और विपरीत श्रद्धा रहित-अविपरीत पर्याय आत्मा में होती है और विपरीत पर्याय से रहित है... समझ में आया ? क्रोध से रहित क्षमा, मान से रहित निर्मानता, माया से

रहित सरलता, लोभ से रहित निर्लोभता-ये सब '**दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे...**' ये सब मोह की पर्याय से रहित, स्वरूप-सन्मुख की दशा-यह सार और निश्चय है। यह धर्म है, यह धर्म है। मोहभाव रहित दशा को धर्म कहते हैं। यह संक्षिप्त व्याख्या की है।

'**सो धर्म जबै जिय धारै...**' देखो ! इसमें भी विशिष्टता की है। ऐसा धर्म जब जीव धारे, तब करता है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह कोई कर्म रोकते हैं कि ऐसा कोई रोकता नहीं है। '**सो धर्म...**' सम्यगर्शन-ज्ञान और चारित्र आदि शुद्धदशा, अशुद्ध मोह आदि से रहित, यह जब ऐसा धर्म '**जबै...**' अर्थात् जब '**जिय...**' अर्थात् जीव '**धारै...**' जब जीव धारण करे, तब धर्म होता है। 'धर्म' शब्द है तो अवश्य न ! धर्म शब्द है न उसमें से 'धारै' निकाला है। रचा है बहुत अच्छा। '**सो धर्म जबै जिय धारै...**' ऐसा धर्म जब आत्मा (धारै)। भाई ! यह तो हिन्दी भाषा है। मूल श्लोक, मूल श्लोक हिन्दी है ऐसा। और हिन्दी सादी है, अर्थ तो गुजराती होता है। मूल भाषा है, वह तो हिन्दी है और हिन्दी भी अत्यन्त सादी तथा सीधी भाषा है। समझ में आया ?

'**जो भाव मोह तैं न्यारे, दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे; सो...**' '**सो**' ऐसा जो धर्म-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो आत्मा के आश्रय से होता भाव, जो मोह से रहित हुई दशा, वह '**धर्म जबै जिय धारै...**' जब जीव धारण करे, धर्म को धारण करे, तब धर्मी होता है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? 'धारती इति धर्मः'। जो अधर्म धारता था, अनादि से करता था, उसमें से (उसके बदले) धर्म को धारण करे, तब वह धर्मी, धर्म को धारण करे, तब धर्मी कहलाता है। कहो, समझ में आया ?

'**तब ही सुख अचल निहारे। जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।**' जब आत्मा, जब से भगवान आत्मा आनन्द और शान्ति का पिण्ड प्रभु ! उसके ओर की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति को धारे, तब से शान्ति को निहारे, आनन्द को निहारे। समझ में आया ? '**तब ही सुख अचल निहारै...**' तब वह आत्मा के आनन्द को, अचल आनन्द-आत्मा का अचल आनन्द, उसे तब से देखता है। समझ में आया ? मोक्ष देखे अथवा तब से मोक्ष की पर्याय, कारणरूप प्रगटकर मोक्ष ऐसा होता है, उसका भान होता है। कहो, समझ में आया ? एक लाईन में बहुत

सरस रखा है इसमें।

जब जीव, आत्मा के स्वभाव की शान्ति-श्रद्धा-ज्ञान को धारण करता है, तब उसे '**तब ही वह (अचल सुख) अचल सुख...**' अर्थात् वास्तविक शान्ति, नित्यानन्द का सुख, नित्य-आनंद-ऐसा सुख, उसे '**निहारै...**' अर्थात् देखता है और उस नित्य आनन्द को पाता है। क्रम-क्रम से यह भावना करते हुए पूर्ण आनन्द को पाता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

भावार्थ :- '**मोह अर्थात् मिथ्यादर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धान, उससे रहित...**' मोहरहित अर्थात् सब, रागादि रहित (भी आ गया)। '**निश्चय सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (रत्नत्रय) ही साररूप धर्म है।**' यह रत्नत्रय साररूप धर्म है। अपने 'नियमसार' में चलता है, उसके साथ मिलान खा गया, लो ! व्यवहार रत्नत्रय, वह वास्तव में साररूप नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय, वह शुभराग है, परन्तु वह मोहरहित भाव नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय-देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, पञ्च महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान - उसमें शुभराग है, वह मोहरहित नहीं है; इसलिए उसे सार नहीं कहा जाता। कहो, समझ में आया इसमें ?'**व्यवहाररत्नत्रय, वह धर्म नहीं है...**' अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय, रागरूप है और इसलिए वह साररूप धर्म नहीं है, राग है।

'**ऐसा बतलाने के लिए यहाँ गाथा में 'सारे' शब्द का प्रयोग किया है। जब जीव, निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्म को स्व-आश्रय से प्रगट करता है...**' जब जीव अपने निश्चय स्वभाव के आश्रय से, शुद्ध चैतन्य के आश्रय से अन्तर्मुख अवलम्बन करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्रगट अर्थात् धारण करता है... कहो, समझ में आया ?'**तब ही वह स्थिर-अचल सुख को (मोक्ष को) प्राप्त करता है।**' संसार का सुख तो सब कल्पित नाशवान है। वह (आत्मिक) सुख तो अन्तर नित्यानन्दमें से प्रगट हुआ। नित्यानन्द आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट होने पर अन्तर आनन्द प्रगट हुआ, उसका फल भी पूर्ण अचल आनन्द प्राप्त है। व्यवहार में राग होता है, राग से पुण्य बँधे और स्वर्ग आदि मिलते हैं। अचल सुख का कारण अचल भगवान नित्यानन्द आत्मा नित्य आनन्द, उसमें स्थिरता करने से जो आनन्द प्रगट होता है, वह आनन्द, पूर्ण आनन्द का कारण है और वह वर्तमान में भी आनन्द का कारण है। समझ में आया ? पर में सुख कब

होगा इसमें ? इस शरीर में निरोगता होवे, अनुकूल होवे...

मुमुक्षु :- पहली निरोगता की यह बात..

उत्तर :- पहली निरोगता की की (है)। कहो, शरीर में निरोगता होवे, 'पहला सुख ते जाते नर्या'-नर्या अर्थात् निरोगता।

मुमुक्षु :- आत्मा की निरोगता।

उत्तर :- वे तो शरीर की कहते हैं। फिर 'दूसरा सुख उस घर में चार लड़के'-ऐसा कहते हैं न ? 'तीसरा सुख सुकुल की नारी, चौथा सुख इसकी कोठी में अनाज' - धूल में भी नहीं है। ये चारों ही दुःखरूप भाव हैं। इनमें सुख है नहीं, धूल में भी नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ? लोगों ने गप्प बना दी। निरोगता, यह निरोगता धूल, धूल की है। इसमें आत्मा को क्या ? यह तो शरीर, मिट्टी है। शरीर निरोग होवो और अन्दर में पैसे-बैसे की कमी हो गयी होवे तो होली सुलगती है या नहीं ? तब निरोग शरीर क्या करेगा ? कहो।

मुमुक्षु :- परन्तु पैसे आये हाथ..

उत्तर :- परन्तु यही कहत हैं, परन्तु जाते हैं, तब इसे दुःख होता है या नहीं ? शरीर निरोग है या नहीं ? यदि निरोग (शरीर) सुख का कारण होवे तो उस समय अन्दर तो तेल रेड्यु (बहाया हो)। तेल रेड्युं समझते हैं ? एक व्यक्ति को दीक्षा दी, नाम दिया नहीं, उसे शिष्य नहीं किया। (संवत) १९७५ में भाई आये थे, चार व्यक्तियों ने दीक्षा ली थी, 'राणपुर', - फिर इसका एक व्यक्ति का नाम नहीं दिया, एक शिष्य का, तुम रहने दो एक का और बाद में.. तेल रेड़ते हैं-ऐसा कहते थे। ऐसे के ऐसे। मैंने कहा, भाई ! अब जिसे तीन हुए होंगे, वे कहे नहीं, तुझे तो यहाँ सब लड्डु उड़ते हैं और यह सब ऐसा होता है, मुझे जलता है अन्दर से... वेष में पड़ा हुआ। आहा..हा.. ! इस संसार में भी ऐसा होता है न ? उसे पैसे हुए और मुझे नहीं मिले; उसके अच्छे लड़के हुऐ और मुझे नहीं मिले; उसे निरोगता और मुझे नहीं मिले; उसकी लड़की अच्छी जगह विवाही और मेरी अच्छी जगह जाती नहीं.. ए.. जलन। होली। इस शरीर से भले निरोगता होवे।

मुमुक्षु :- चारों एकसाथ चाहिए न।

उत्तर :- धूल में भी नहीं। चारों होवे तो भी अनेक की जलन होती है, बापा ! बड़ा राजा होवे, उसे रानी मानती न हो.. बाहर में सब अनुकूलता दिखाई दे.. समझ में आया ? बह कड़क रानी के जमीदारनी, वह बनियो जैसी डरपोक न हो। ऐ..ई.. ! वह जमीदारनी हो सर्पिणी बड़ी, दरबारसिंह विचारकर बोलना, हम भी जमीदार हैं, हाँ ! ऐसा बोले। अन्दर से ऊँचा करे उसको, क्या करे ? कहाँ जाए ? यह सब हूए हैं और हमें तो सब नाम-ठाम का भी पता है। वे सब अन्दर जलते हैं। बाहर से देखो तो ऐसे कपड़े ऊँचे और ऐसा राज व मोटर और... परन्तु अन्दर पता होता है कि यह रानी.. घर जाए... वहाँ रानी को ऐसे जहाँ देखे (तो) हाय.. ! हाय ! यह मानती नहीं। दूसरे सब मानते हैं, परन्तु यह एक मानती नहीं। समझ में आया ? खुलेआम कहे, हमारा नाम लेना नहीं, हम भी जमीदार-जमीदारनी हैं, हाँ ! जमीदार की पुत्री (हैं), हाय.. हाय.. ! अन्दर होली सुलगती है, बाहर में धूल भी नहीं, व्यर्थ में मूढ मान बैठा है। आत्मा में सुख है यह कहते हैं, देखो न !

भगवान आत्मा आनन्द का पिण्ड है। अन्दर आनन्द के रत्न के लाल भरे हैं, अन्दर। आहा..हा.. ! लाल रत्न की गठरियाँ) कहते हैं कि भाई ! इस आत्मा की सन्मुख की दृष्टि कर, इसमें सुख है, इसका ज्ञान कर, इसमें आनन्द है, इसमें स्थिर हो, इसमें शान्ति है। समझ में आया ? बात इसे कैसे जमे ? रच दिया.. ऐसे भ्रमण.. भ्रमण.. भ्रमण.. बाहर में.. बाहर में.. चारों और सुलगा ही करता है। समझ में आया ?

'जब जीव, स्व आश्रय से निश्चय रत्नत्रयरूप धर्म को प्रगट करता है, तभी वह स्थिर-अक्षय सुख को (मोक्ष को) प्राप्त करता है। इस प्रकार चिन्तवन करके सम्यग्दृष्टि जीव, बारम्बार स्वसन्मुखता का अभ्यास करता है, वह धर्म भावना है।' बारम्बार.. स्वयं ही अन्तर भगवान बिराजमान है; अकेला आनन्द का रसकन्द आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द, जैसा सिद्ध को आनन्द है, वैसा ही आनन्द अन्दर पड़ा है। सिद्ध को एक समय की पर्याय का प्रगट आनन्द है। अन्दर में ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का आनन्द एक आनन्दगुण में पड़ा है। वहाँ मोहरहित होकर दृष्टि करने का समय नहीं निकालता, फिर दु:खी होता है। दु:खी होता है स्वयं के कारण; मानता

है कि कर्म के कारण (दु:खी हूँ)। इस प्रतिकूलता के कारण, यह व्यवस्था नहीं है, (इसके) कारण (दु:खी हूँ)। मूढ बाहर का दोष निकालकर उसका ही दोष निकाला करता है। कहो, समझ में आया ?

धर्मभावना, वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग फरमाते हैं, भाई ! तेरा स्वभाव तेरे पास है न प्रभु ! उसकी तू एकाग्र होकर भावना कर, उसमें तुझे आनन्द है। लो ! यह चौदहवाँ बोल (काव्य) हुआ। अब पाँचवी ढाल की एक अन्तिम गाथा रही।

आत्मानुभवपूर्वक भावलिंगी मुनि का स्वरूप

सो धर्म मुनिनकरि धारिये, तिनकी करतूत उचरिये;
ताकों सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।

अन्वयार्थ :- (सो) ऐसा रत्नत्रय (धर्म) धर्म (मुनिनकरि) मुनियों द्वारा (धरिये) धारण किया जाता है, (तिनकी) उन मुनियों की (करतूत) क्रियाएँ (उचारिये) कही जाती है, (भवि प्रानी) हे भव्य जीवों। (ताको) उसे (सुनिये) सुनों और (अपनी) अपने आत्मा के (अनुभूति) अनुभव को (पिछानी) पहिचानो।

भावार्थ :- निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्म को भावलिंगी दिगम्बर जैन मुनि ही अंगीकार करते हैं-अन्य कोई नहीं। अब, आगे उन मुनियों के सकलचारित्र का वर्णन किया जाता है। हे भव्यो ! उन मुनिवरों का चारित्र सुनो और अपने आत्मा का अनुभव करो।।१५।।

पाँचवी ढाल का सारांश

यह बारह भावनाएँ चारित्रगुण की आशंकि शुद्धपर्याये हैं; इसलिए वे सम्यग्दृष्टि जीव को ही हो सकती है। सम्यक् प्रकार से यह बारह प्रकार की भावनाएँ भाने से वीतरागता की वृद्धि होती है; उन बारह भावनाओं का चिंतवन मुख्यरूप से तो वीतरागी दिगम्बर जैन मुनिराज को ही होता है तथा गौणरूप से सम्यग्दृष्टि को होता है। जिसप्रकार पवन के लगने से अग्नि भभक उठती है, उसी प्रकार अन्तरंग परिणामों की शुद्धतासहित इन भावनाओं का

चिंतवन करने से समताभाव प्रगट होता है और उससे मोक्षसुख प्रगट होता है। स्वोन्मुखतापूर्वक इन भावनाओं से संसार, शरीर और भोगों के प्रति विशेष उपेक्षा होती है और आत्मा के परिणामों की निर्मलता बढती है। (इन बारह भावनाओं का स्वरूप विस्तार से जानना हो तो 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा', 'ज्ञानार्णव' आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये)।

अनित्यादि चिंतवन द्वारा शरीरादि को बुरा जानकर, अहितकारी मानकर उनसे उदास होने का नाम अनुप्रेक्षा नहीं है, क्योंकि यह जिसप्रकार पहले किसी को मित्र मानता था तब उसके प्रति राग था और फिर उसके अवगुण देखकर उसके प्रति उदासीन हो गया। उसीप्रकार पहले शरीरादि से राग था, किन्तु बाद में उनके अनित्यादि अवगुण देखकर उदासीन हो गया, परन्तु ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। किन्तु अपने तथा शरीरादि के यथावत् स्वरूप को जानकर, भ्रम का निवारण करके, उन्हें भला जानकर राग न करना तथा बुरा जानकर द्वेष न करना-ऐसी यथार्थ उदासीनात के हेतु अनित्यादि आदि का यथार्थ चिंतवन करना ही सच्ची अनुप्रेक्षा है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ. २२९, श्री टोडरमल स्मारक ग्रन्थमाला से प्रकाशित)।

'आत्मा के अनुभवपूर्वक भावलिंगी मुनि का स्वरूप।' अब, मुनि का स्वरूप कहते हैं।

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये;
ताकों सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।

गृहस्थाश्रमी धर्मी जीव को भी, आंशिक आत्मश्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता हुए होने पर भी, उसे मुनिपना अंगीकार करने की भावना होती है। समझ में आया ? कब मुनिपना अंगीकार करूँ ? कब मुनिपना (ग्रहण करूँ) ? पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण स्थिरता न हो सके, परन्तु भावना तो (होती है)। भावना शब्द से (आशय यह है कि) वही चिन्तवना, एकाग्रता, वह नहीं। कब मुनिपना (लूँ) ? 'श्रीमद्' में नहीं आया ?

अपूर्व अवसर ऐसा किसदिन आयेगा ?
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब ?

देखो ! मोतियों का लाखों का व्यापार था, गृहस्थाश्रम में थे, परन्तु (भावना भाते हैं कि),

कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब ?
सम्बन्धों का बन्धन तीक्ष्ण छेदकर,
सम्बन्धों का बन्धन तीक्ष्ण छेदकर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ?
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ?
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ?

तीर्थंकर जैसे गृहस्थदशा में रहे होने पर भी, बारम्बार ऐसी भावना भाते थे। समझ में आया ? 'शान्तिनाथ', 'कुन्थुनाथ', 'अरनाथ'.. जिनके घर में छियानवैं-छियानवैं हजार पद्मिनी जैसी रानियाँ और जिनके घर छियानवै करोड़ सैनिक, छियानवैं करोड़ गाँव, अड़तालीस हजार पाटन, बहत्तर हजार नगर.. समझ में आया ? वे अन्तर की दृष्टि के आत्मा के ध्यान के आनन्द में यह भावना करते थे कि अरे... ! हम कब मुनि होंगे ? हम तीर्थंकर होकर आये हैं, हमें भी चारित्र के बिना केवलज्ञान नहीं है। हम तीर्थंकर हैं, विश्वास है कि इस भव में केवल (ज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं), परन्तु यह चारित्र-स्वरूप की रमणता, दर्शन-ज्ञान सहित अन्तर की लीनता की जमावट बिना हमें भी मोक्ष नहीं होगा। कहो, समझ में आया ?

आता है न ? '**ध्रुव सिद्धि यरो...**' ऐ..ई.. ! आता है कहीं ? 'अष्टपाहुड़' में आता है। जिन्हें सिद्धि-मुक्ति निश्चय है.. तीर्थंकर को तो उसी भव में 'ध्रुवसिद्धि'-मुक्ति निश्चित है, तथापि वे भावना (भाते हैं कि) अरे.. ! हम कब चारित्र ग्रहण करेंगे ? आहा..हा... ! हम अपने स्वरूप में कब रमेंगे ? झड़ी लगती है, जैसे मौसम में (सीजन में) व्यापारी को ममता की जड़ी लगती है। भाई ! दुकान जब लेनी होगी, झड़ी लगती होगी न दोनों व्यक्तियों को ? ओहो.. ! कहते हैं कि उस समय कितना मोह था, यह शक्कर देनी और क्या कहलाता है ? पाघड़ी देनी और अमुक देना औरदोनों जने फिरते थे, उस समय। ऐसे ही जैसे जगत को जो प्रिय चीज प्राप्त करने के लिए ममता की झड़ी लगी हो, वैसे धर्मी को प्रिय चारित्र है, उसकी एकाग्रता की झड़ी लगी होती है। समझ में आया ? आहा..हा... !

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचररिये;

ताकों सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछ़ानी ।।१५।।

सम्यग्दर्शन-अपना अनुभव देख। तेरा स्वरूप देख, भाई ! वह सिद्धसमान प्रभु है, उसकी अनुभूति देख। अनुभूति को देखकर ऐसी भावना कर, मुनिपने की भावना कर। विशेष स्थिरता कैसे प्रगट हो-ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि जीव को गृहस्थाश्रम में भी होती है। समझ में आया ?

अन्वयार्थ :- '**(सो) ऐसा रत्नत्रयस्वरूप धर्म...**' उसके साथ सन्धि की है। पहले धर्म (कहा) था न ऊपर ? '**सो धर्म। ऐसा रत्नत्रयस्वरूप धर्म (मुनिनकरि) मुनियों द्वारा धारण किया जाता है।**' श्रावक इस पूर्ण धर्म को धारण नहीं कर सकता। पहले श्रावक की व्याख्या आ गयी है। मुनि के अतिरिक्त सर्व विपरीत (श्रावक) यह मुनि भी अन्तर में मुनिपना, हाँ ! अत्यन्त ऐसे धीमे.. धीमे.. कहीं प्रतिबद्ध नहीं कि मुझे यहाँ आधे घण्टे बोलना पड़ेगा-ऐसा प्रतिबद्ध नही कि यहाँ इतना शास्त्र लिखना पड़ेगा-ऐसा भी जिन्हें विकल्प में प्रतिबद्ध नहीं; अत्यन्त अप्रतिबद्ध (है)। समझ में आया ? अन्तर आनन्दस्वरूप में रमने को जो चारित्र धारण करते हैं, उनकी अन्तर की उग्रता के पुरुषार्थ में बहुत ही आगमनता, अतीन्द्रियता होती है। कहते हैं, ऐसा धर्म, मुनि धारण कर सकते हैं। गृहस्थदशा में श्रावक ऐसा धर्म धारण नहीं कर सकता है।

'**उन मुनियों की क्रियायें कही जाती है।**' उन मुनियों की आचरण की क्रियायें कही जाती है। '**हे भव्य जीवों ! उसे सुनो, और अपने आत्म के अनुभव को (पिछानो) पहिचानो।**' मूल तो इस तेरे आत्मा को पहिचान कि यह आत्मा पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्य है, उसका अनुभव कर और फिर ऐसी चारित्र की भावना कर अथवा ऐसी चारित्र की व्याख्या की है, वह तू सुन कि चारित्र कैसा होता है। यह अन्तिम ढाल, अब छठवीं ढाल। '**अपनी अनुभूति पिछानी।**' अपने आत्मा का आनन्द अनुभव। इस आत्मा की अनुभूति-अनुभव इसे पहिचान।

अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे

भजना परिब्रह्म को दूजा कुछ न कहना रे।

पहिचानो, कहते हैं। ओ..हो..हो...! दुनिया की सिरपच्ची छोड़। व्यापार-धन्धे के विकल्प छोड़-ऐसा कहते हैं; और ऐसी मुनिदशा की भावना कर। इसके बिना-चारित्र के बिना

मुक्ति नहीं हैं और चारित्र तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान के बिना होती नहीं है। समझ में आया ?

भावार्थ :- 'निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्म को भावलिंगी दिगम्बर जैन मुनि ही अंगीकार करते हैं, अन्य कोई नहीं।' जिन्हें बाहर में नग्नदशा हो गयी हो, अन्दर में जो तीन कषायरहित आत्माके वीतरागी आनन्द की उग्रता के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में पड़े हो... समझ में आया ? वे जंगल में होवे तो भी उस आनन्द में होते हैं, आनन्द में मस्त होते हैं। मुनि, जंगल में हों परन्तु जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन उग्र हो गया है, प्रचुर स्वसंवेदन (हुआ है)-ऐसा 'कुन्दकुन्दाचार्य' ('समयसार' की) पाँचवी गाथा में कहते हैं। मुनियों को प्रचुर आनन्द-स्वसंवेदन-स्व (अर्थात्) अपना, सं-प्रत्यक्ष वेदन.. प्रचुर स्वसंवेदन (हुआ है)। समकिती को स्वसंवेदन है; सम्यग्दृष्टि को स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष आनन्द का आंशिक वेदन है; मुनि को प्रचरु स्वसंवेदन है। समझ में आया ? आहा.. ! दुनिया देखे कि वे दु:खी हैं, भगवान कहते हैं कि ये आनन्द में हैं।

देखो ! यहाँ कहते हैं, आहा..हा... ! बाघिन खाती है, सिंहन-किसे खाये ? आनन्द को खाता है, यह आत्मा, अन्तर में आनन्द को लूटता है। अतीन्द्रिय आनन्द का सबड़का लेते हैं। सबड़का भाषा आती है तुम्हारे में ? सबड़का कढी-बढ़ी होती है न ऊँची कढी या दूधपाक, खीर (होवे, उसका) सबड़का (ले)। भाई कहते हैं, सबड़का भी कहते हैं। अपने समरूपता आती हो तो हमारे काठियावाड़ी सबडका भाषा है। समझ में आया ?

यह आत्मा आनन्द का सरोवर है। आहा..हा... ! जिसे तृषा लगी हो और फिर वह वहाँ मुँह डाले.. यह बकरी देखी ? (उसे) पानी की प्यास लगी थी। दो पैर नीचे हों और दो पैर पीछे, ठण्डा पानी का तालाब भरा हो और इसमें प्यास लगी हो तो एकदम पीवे। बकरी.. बकरी कहते हैं न, क्या कहते हैं ? बकरी ऐसे दो पैर नीचे रखे अर्थात् कि ऐसे मुँह घुमाना चाहिए न ? दो पैर पीछे। ऐसे पीवे तो मानो वह तो एकरस हो गयी हो। पीछे से कोई बाघ मारने, काटने आवे तो उसे पता नहीं रहता, उसे इतना रस होता है। उसकी आँखे भी वहाँ होती है, नज़र भी वहाँ होती है, सब पूरा सब (लक्ष्य वहाँ होता है)। पीछे से कोई खाने आवे, मारने आवे तो पता नहीं होता। अभी पकड़ेगा या नहीं तो भी पता नहीं होता।

इसी तरह (यहाँ) कहते हैं कि आत्मा में मुनि इतना आनन्द चूसते हैं, अन्दर में तालाब भरा है, ऐसे आत्मा आनन्द से भरा भगवान है, उसमें अन्तर की एकाग्रता में अकेला आनन्द चूसते हैं कि संयोग में परीषह या उपसर्ग का उन्हें पता नहीं पड़ता। समझ में आया ? इसका नाम मुनिपना है। मुनिपना कहीं ऐरागेरा नहीं है कि साधारण बात से प्राप्त हो जाए। समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं, ऐसा धर्म तो भावलिंगी दिगम्बर मुनि धारण कर सकते हैं। ऐसा धर्म दूसरा गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी भी, मुनि का जो धर्म है-ऐसा धारण नहीं कर सकता। मिथ्यादृष्टि को तो होगा ही किसका ? अन्यमति तो सब भले नग्न घूमे, परन्तु यह धर्म उन्हें नहीं हो सकता। वस्तु का भान नहीं है, दृष्टि नहीं है, मुझे अन्तर में कहाँ स्थिर होना है ? किस चीज में ? - उस चीज का पता नहीं है। वह चीज कैसी है, कितनी है-इसका पता नहीं है। अज्ञानी को तो चारित्र होता नहीं, क्योंकि सम्यग्दर्शन नहीं है; क्योंकि सम्यग्दर्शन का ध्येय जो पूर्ण आत्मा कितना है-उसका उसे पता नहीं है। समझ में आया ? आहा..हा... !

यह '**निश्चयरत्नत्रय स्वरूप...**' भाई ! अब सब जिसे-तिसे जय महाराज (करे)। इन सब सेठ़ियों ने भी किया, बहुत मक्खन लगाया, परन्तु ये कहते हैं-हम जानते थे कि ये सब ऐसा करते है। आहा..हा... ! सम्यग्दर्शन के आनन्द के स्वाद के समक्ष विशेष आनन्द लेने को चारित्र अंगीकार करते हैं।

यह उसमें पाठ ऐसा है, उस 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में (कि) राग-द्वेष की निवृत्ति के लिये.. ऐसा आता है न ? यह (एक विद्वान ने) इससे पहले कहा था, उस समय (संवत) १९९२ में, १९९२ के साल में आये थे न ? (एक विद्वान) और क्या कहलाते हैं दूसरे ? भाई ! अभी ये 'कलकत्तावाले' क्या कहलाते हैं ? भगत-ये दो आये थे, दो आये थे, (संवत) १९९२ के साल में आये थे। 'हीराभाई' के मकान में। तीस वर्ष हो गये। वे उस दिन कहते थे कि देखो ! मुनि तो राग-द्वेष की निवृत्ति के लिये चारित्र ग्रहण करते हैं, इसलिए राग-द्वेष घटान के लिये चारित्र ग्रहण करना। यह शब्द 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में आता है-राग-द्वेष की निवृत्ति हेतु.. परन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि वीतरागता प्रगट करने के लिए चारित्र है। समझ में आया ? यह श्लोक उस दिन बोले थे। आहा..हा... !

गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की वीतरागता का अंश आया होता है, चारित्र का अंश थोड़ा होता है परन्तु मुनिदशा के बिना ऐसा चारित्र... आहा..हा... ! संयम चारित्र और उसकी यह मिठास की-आनन्द की उग्रता.. जो देव को नहीं है, इन्द्र को नहीं है, समकिती श्रावक को नहीं है और पाँचवे गुणस्थानवाले श्रावक को (नहीं है)। इतना आनन्द उन्हें बढ़ गया होता है। समझ में आया ?

कहते हैं, ऐसे भावलिंगी मुनि यह चारित्र '**अंगीकार करते हैं, दूसरे नहीं।**' भार नहीं साधारण जीव का। '**आगे उन मुनियों के सकलचारित्र का वर्णन किया जाता है। हे भव्यों ! उन मुनिवरों का चारित्र सुनो और अपने आत्मा का अनुभव करो।**' बढ़ाओ... सम्यग्दर्शन-ज्ञान करो और उससे भी बढ़ाओ-अनुभव करो।

पाँचवी ढाल का सारांश

'**यह बारह भावनायें चारित्रगुण की आंशिक शुद्धपर्याय है...**' चारित्र अर्थात् संवर है न ? संवर की भावना है न ? '**(इसलिये) वे सम्यग्दृष्टि जीव को ही हो सकती है...**' ऐसी भावनायें मिथ्यादृष्टि को नहीं होती। '**सम्यक् प्रकार से यह बारह प्रकार की भावनायें भाने से वीतरागता की वृद्धि होती है; उन बारह भावनाओं का चिन्तवन मुख्यरूप से तो वीतराग दिगम्बर जैन मुनिराज को ही होता है...**' मुख्यरूप से.. श्रावक करता है '**और गौणरूप से सम्यग्दृष्टि को होता है।**' (यह सब) पहले कहा है, इसकी बात हो गयी है, पहले बात हो गयी है न ? बारह भावनायें भाते-भाते, जैसे अग्नि को फूँक मारे और अग्नि प्रज्वलित हो, वैसे आत्मा की अग्नि-एकाग्र शान्ति है, वह ऐसी भावना भावे तो वह शान्ति प्रगट होती है।

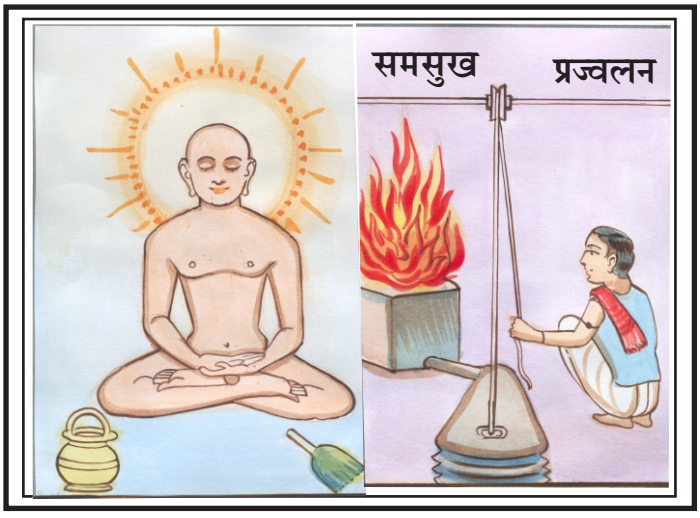

दृष्टान्त आया था न ? फोटो नहीं आया था ? क्या आया था फोटो ? दिखता है या नहीं वहाँ ? यह नहीं इसमें। उसमें है। भावना का नहीं आया था ? प्रज्वलित। चित्र में वहाँ १३९ पृष्ठ पर है, हिन्दी देखो। देखो। '**इन चिन्तत समसुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे...**' यह दूसरी ही है। '**इन चिन्तत समसुख जागे...**' यह पाँचवी ढाल का दूसरा श्लोक है। '**जिमि ज्वलन पवन के लगे...**'

इन चिन्तत सम सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागे;
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठाने॥२॥

देखो ! यह देखो ! यहाँ अग्नि है, उसमें देखो वह फूँक मारता है, अग्नि प्रज्वलित होती है, यह फोटो है। है या नहीं ? ऐसे भगवान आत्मा जिसने अन्दर के शान्ति के आनन्द को अन्तर दृष्टि में लिया है, वह इन बारह भावनाओं की फूँक मारता है तो शान्ति प्रज्वलित – उग्र होती है– ऐसा कहते हैं। भूँगली नहीं मारते सोनी ? सोनी कहते हैं न ? उस भूँगली में से फू.. फू.. करते हैं न ? अग्नि को जलाने (के लिये) इसी प्रकार धर्मात्मा सोनी, अपना निर्मल सोना शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसे अन्दर दृष्टि–ज्ञान में लिया है। उसे जरा अशुद्धता थोड़ी है, उसे बारह भावना द्वारा शुद्धता को प्रगट करके अशुद्धता का नाश करता है। कहो, समझ में आया इसमें ? यह आ गया, यह सब आ गया है। यह अधिक देखना होवे तो 'स्वामी कार्तिकेयनाप्रेक्षा' में से (देख–पढ़) लेना। लो ! 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' की अनीति की बात थोड़ी ली है। यह पाँचवी ढाल पूरी हुई।

छठवीं ढाल

(हरिगीत छन्द)

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य महाव्रत के लक्षण

षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिंसा टरी;
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू, बिना दीयो गहैं;
अठदशसहस विध शील धर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं।।१।।

अन्वयार्थ :- (षट्काय जीव) छह काय के जीवों को (न हननतैं) घात न करने के भाव से (सब विध) सर्व प्रकार की (दरवहिंसा) द्रव्यहिंसा (टरी) दूर हो जाती है और (रागादि भाव) राग-द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों को (निवारतैं) दूर करने से (भावित हिंसा) भावहिंसा भी (न अवतरी) नहीं होती, (जिनके) उन मुनियों को (लेश) किंचित् (मृषा) झूठ (न) नहीं होती, (जल) पानी और (मृण) मिट्टी (हू) भी (बिना दियो) दिये बिना (न गहैं) ग्रहण नहीं करते; तथा (अठदशसहस) अठारह हजार (विध) प्रकार के (शील) शीलको-ब्रह्मचर्य को (धर) धारण करके (नित) सदा (चिद्ब्रह्ममें) चैतन्यस्वरूप आत्मा में (रमि रहैं) लीन रहते हैं।

भावार्थ :- निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक स्वरूप में निरन्तर एकाग्रतापूर्वक रमण करना ही मुनिपना है। ऐसी भूमिका में निर्विकल्प ध्यानदशारूप सातवाँ गुणस्थान बारम्बार आता ही है। छठवें गुणस्थान के समय उन्हें पंच महाव्रत, नग्नता, समिति आदि अट्ठाईस मूलगुण के शुभभाव होते हैं, किन्तु उसे वे धर्म नहीं मानते; तथा उस काल भी उन्हें तीन कषाय चौकड़ी के अभावरूप शुद्धपरिणति निरन्तर वर्तती ही है।

छह काय (पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर काय तथा एक त्रस काय) के जीवों का घात करना, सो द्रव्यहिंसा है और राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान इत्यादि भावों की उत्पत्ति होना, सो भावहिंसा है। वीतरागी मुनि (साधु) यह दो प्रकार की हिंसा नहीं करते, इसलिये उनको (१)

अहिंसा महाव्रत[१] होता है। स्थूल या सूक्ष्म-ऐसे दोनों प्रकार की झूठ वे नहीं बोलते, इसलिये उनको (२) सत्य महाव्रत होता है। अन्य किसी वस्तु की तो बात ही क्या, किन्तु मिट्टी और पानी भी दिये बिना ग्रहण नहीं करते, इसलिये उनको (३) अचौर्यमहाव्रत होता है। शील के आठरह हजार भेदों का सदा पालन करते हैं और चैतन्यरूप आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं, इसलिये उनको (४) ब्रह्मचर्य (आत्म-स्थिरतारूप) महाव्रत होता है।।१।।

अब छठवीं ढाल, छठवीं ढाल। मुनिव्रत का-मुनिचारित्र का स्वरूप अन्त में कहते हैं। बहुत अच्छी बात की है। 'छहढाला' (पण्डित) 'दौलतरामजी' ने बहुत अच्छी संक्षिप्त में बहुत सरस (बनाई है)। गागर में सागर भर दिया है। (यह) बहुत-सौं को कण्ठस्थ होती है, परन्तु इसका भाव नहीं समझते। (ऐसे की ऐसे) रट लेते हैं। हमारे (इन्हें) ऐसा था न ? याद किया था, बस ! याद किया, जाओ।

मुमुक्षु :- छोटे बच्चों को पाठशाला में पढ़ाते हैं।

उत्तर :- हाँ, सब को पढ़ाते हैं परन्तु यह तो बड़े हैं न, यह तो पहले हैं। इनका दिगम्बर का जन्म है।

मुमुक्षु :- इन्हें सरल पड़ जाए न ?

उत्तर :- इसका कुछ नहीं। समझ में उसे सरल पड़े। पहले थोड़ा-बहुत हो तो सरल पड़े न-ऐसा कहते हैं।

हरिगीत छन्द, लो ! यह हरिगीत कहा है, यही अपना हरिगीत। '**अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्यमहाव्रत के लक्षण...**' मुनि को ये पाँच महाव्रत होते हैं। मुनि अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्ज्ञान प्रगट किया है, उसमें सम्यक्चारित्र-उग्ररूप से शान्ति का, आनन्द का प्रगटपना किया है, उन्हें ऐसे पँच महाव्रत के शुभ विकल्प (होते हैं)। इस विकल्प द्वारा उनका चारित्र कैसा है-ऐसा यहाँ बताना चाहते हैं।

१. यहाँ वाक्य बदलने से महाव्रतों के लक्षण बनते हैं। जैसे कि-दोनों प्रकार की हिंसा न करना सो अहिंसामहाव्रत है-इत्यादि।

समझ में आया ?

(हरिगीत छन्द)

षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिंसा टरी;
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू, बिना दीयो गहैं;
अठदशसहस विध शील धर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं।।१।।

आहा..हा...! '**चिद्ब्रह्म में नितरमि रहे...**' मुनि अर्थात्... आहा..हा..! समझ में आया ? देखो न !' श्रीमद्' ने 'अपूर्व अवसर' लिखा है। उसमें तो यह लिखा है न ?' बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो वह भी बाह्यान्तर निर्ग्रन्थपना है। चिद्ब्रह्म में यह आनन्द.. चिद् अर्थात् ज्ञान, ब्रह्म अर्थात् आनन्द। इस चिद्ब्रह्म अर्थात् जो आनन्द में नित्य रमते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में चरना, रमना चारित्र है न ? चरना, चरना अर्थात् यह पशु चारा चरते हैं न ? बाहर जाए (तब) चरते हैं, कहते हैं न ? आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द की महा फलस भरी है, अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, उसमें एकाग्र होकर चरते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द को चरते हैं, रमें.. रमें.. लीन.. लीन.. लीन.. लीन.. दूसरे देवलोक की इन्द्राणी आये, विचलित करे तो पता नहीं, इतना आनन्द है। आहा..हा...! ऐसे मुनियों को ऐसा पंच महाव्रत का भाव होता है-ऐसा कहते हैं। अन्तिम शब्द रखकर (-ऐसा कहते हैं)। समझ में आया ? (अभी) पहली मूल बात पड़ी रही और ऊपर की रह गयी। चावल (रह गये)।

मुमुक्षु :- चावल अर्थात् ?

उत्तर :- चावल अर्थात् ऐसे मानो यह अहिंसा पालते हैं, महाव्रत पालते हैं, परन्तु ये कहाँ चावल है। वह मूल बात रह गयी-अन्दर दर्शन-ज्ञान और शान्ति और आनन्द जो है। आहा..हा...! समझ में आया ?

अन्वयार्थ :- 'पाँचवी ढाल में कहा, उन मुनिराजों को (षट्काय जीव) छहकाय के जीवों का घात नहीं करने से...' लो ! छह काय के जीव। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस छह काय जीव हैं, हाँ ! जीव हैं वे। एक कण पृथ्वी में एक कण में असंख्य जीव हैं।

पानी की एक बूंद में असंख्य एकेन्द्रिय जीव हैं। पृथ्वी पानी, अग्नि.. अग्नि की एक चिंगारी में असंख्य जीव। वायु, वनस्पति, आहा..हा...! एक पत्ता (उसमें) असंख्य जीव हैं। आलू के टूकड़े में अनन्त जीव हैं। त्रस-दोइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय-इन छह काय की हिंसा (नहीं) करने के भाव से '**सर्व प्रकार द्रव्यहिंसा (टरी) दूर हो जाती है।**' उन्हें यह भाव नहीं होता। शब्द यहाँ है, हाँ ! देखा ?

'**न हननतैं, सब विध दरव हिंसा टरी.. जीव न हननतैं सब विध दरवहिंसा टरी...**' ऐसा। यह हनन-घात का भाव नहीं, इसलिए उन्हें द्रव्यहिंसा दूर हो गयी है। भाव (हिंसा) बाद में कहेंगे। '**षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिंसा टरी...**' एक एकेन्द्रिय का एक दाना या टूकड़ा भी.. हरी, काई होती है न ? नीम, नीम का इतना पत्ता, इतना टूकड़ा, हाँ ! उसमें असंख्य जीव हैं। उसके ऊपर पैर दे और पड़गाहे तो ले नहीं। पानी का बिन्दु उनके लिये बनाया होवे तो मर जाए तो भी पानी ले नहीं-ऐसा जिनके छह काय की दया का भाव होता है। समझ में आया ? परन्तु उस चिद्ब्रह्म (में) रमने की भूमिकासहित की (बात है)।

छह कायके जीव है। छह काय के मावतर (पीहर) है-ऐसा कहते हैं। आया है न ? छह काय का पीहर, छह काय के माँ-बाप। पीहर, पीहर। किसी प्राणी को मुझ से दुःख न होओ। एकेन्द्रिय भी अनन्त जीव एक इतने से टूकड़े में। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। वह पाँच शेर, पाँच शेर, दस-दस शेर पानी साधुओं के लिये करे (और वे) लें (तो) उनके व्यवहार का भी ठीकाना नहीं है, (उसे निश्चय) वस्तु हो नहीं सकती। इससे पहली बात रखी-'**छह काय जीव न हननतैं...**' नाश करने का भाव जिन्हें नहीं होता। यहाँ (लोगों में) बाहर का रहा कि यह छह काय को नहीं मारता, छह काय को नहीं मारता; परन्तु छह काय को नहीं मारना.. यह भाव है, वह शुभभाव किसे व्रतरूप होता है ? जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और चिद्ब्रह्म में रमणतारूप आनन्द होता है, उस भूमिका में ऐसा भाव होता है। समझ में आया ? प्रत्येक जीव के प्रति उन्हें करुणाभाव है।

'**छह काय के जीवों का घात नहीं करने के भाव से समस्त प्रकार की द्रव्यहिंसा (टरी) दूर हो जाती है.. न हननतैं..**' उसमें से निकाला है। भावहिंसा बाद में कहेंगे। '**रागादिभाव निवारतैं...**' देखो ! रागादि भाव हैं, उन्हें टाला है, इसलिए '**हिंसा न भाविक अवतरी..**' इसमें

भावहिंसा नहीं होती। अवतरी अर्थात् उत्पन्न नहीं होती क्योंकि रागादि भाव मिटाये हैं-ऐसा कहा है न ? अन्दर से रागादि मिटाये हैं। राग है, वही भावहिंसा है। शुभ-अशुभराग है, वह भावहिंसा है। उस '**रागादिभाव निवारतैं...**' जिसने ऐसा भाव का अन्तर में अभाव किया है। आहा..हा... !

मुनि अर्थात् परमेश्वरपद। मुनि अर्थात् 'णमो लोए सव्व साहूणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं'-पाँच पद के साथ ऐसा जो चारित्र कहते हैं कि श्रावकों को सम्यग्दर्शनसहित उसकी भावना करनी और अपनी दशा को पहिचानना, कितनी अद्भुत दशा है। ऐसी दशा नहीं है, उसकी भावना करनी-ऐसा कहते हैं, हाँ ! पहले कहा था न ? पिछानना, अपनी अनुभूति पहिचानना।

कहते हैं, इन छह काय के जीवों का कोई भी एक कण-पृथ्वी का, पानी का, अग्नि का, वायु का, वनस्पति और त्रस-किसी जीव का घात नहीं करते, नव-नव कोटि से-ऐसा आया न ?'सब विध'-नव कोटि-मन, वचन, काया, करना, कराना और अनुमोदन - नव-नव कोटि से छह काय के जीव को घात नहीं करने का भाव उन्हें होता है-ऐसी जिन्हें दया प्रगट हुई है। ओ..हो..हो.. ! अन्दर इतनी वीतरागता है कि इससे विकल्प इतना (आता है कि) मुझसे छह काय के किसी प्राणी को दु:ख न होवे। उन्हें अनन्त जीवों की आस्था है न ? निगोद में अनन्त जीव हैं, काई में अनन्त जीव हैं, अनन्त जीव हैं। इस तरह नीम का फूल कहलाता है न फूल, (उसमें) अनन्त जीव हैं। ऐसा भाव (-जीव घात नहीं करने का भाव) आत्मा के आनन्द में रमनेवाले चारित्रवन्त सन्तों को यह पहला महाव्रत ऐसा होता है। उसमें से यह ले लेना। समझ में आया ?

'**रागादिभाव निवारतैं, हिंसा न भाविक अवतरी...**' अर्थात् हिंसा हुई नहीं, वह अहिंसा व्रत कहा जाता है-ऐसा लेना। यह बाद में लेगें, एक शब्द। उनने लिखा है, समझे न ? इसमें नहीं होगा। यहाँ कहते हैं-'**नोंध :- यहाँ वाक्य बदलने से अनुक्रम से महाव्रतों के लक्षण बनते हैं...**' नीचे हैं, इस तरफ है। वाक्य बदलने से अर्थात् क्या ? कि यह हुआ, नहीं घात करना-यह हुआ, इसलिए अहिंसा महाव्रत हुआ, ऐसा। छह काय के जीव किसी भी जीव को मन-वचन-काया से, कृत-कारित-अनुमोदना से घात नहीं करना; इसका नाम पहला अहिंसा

महाव्रत हुआ। ओ..हो..हो...! कहो, मुनि को ऐसा भाव-व्यवहार होता है, नहीं होता-ऐसा नहीं। निश्चय अकेला होवे और ऐसा व्यवहार न होवे-ऐसा नहीं है। व्यवहार ऐसा होता है। समझ में आया ?

श्रावक के व्यवहार में अकेली त्रस की हिंसा का त्याग है या संकल्पी हिंसा का त्याग है। मुनि को आत्मा की इतनी आनन्ददशा में इतना एक जरा-सा विकल्प-छह काय के जीवों को न मारने का भाव होता है। सर्व सावद्ययोग का त्याग है-ऐसी दशा मुनि धारण कर सकते हैं। महाउग्र पुरुषार्थी, जिन्हें एकाध भव आदि में मुक्ति की तैयारी है-ऐसे जीव, चारित्र (अंगीकार करते हैं)। ऐसा चारित्र, हाँ ! यों लोगों ने कल्पना से माना हुआ बाहर का वह नहीं। भाई ! आहा..हा..! अन्दर में जहाँ राग का विकल्प मिट गया है, आत्मा में अहिंसा प्रगट हुई, देखो ! अन्दर में अहिंसा.. आहा..हा...! उन्हें ऐसा जरा-सा राग छह काय को न मारना-घात न करना, वह होता है। वीतराग होकर वह भी मिट जाता है।

'**राग-द्वेष, काम, क्रोध, मान...**' यह असत्य की बात कहते हैं। यह भावहिंसा की बात करते हैं। '**राग-द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि भावों को दूर करने से...**' यह तो पहले में भावघात का आया था, यहाँ अन्तर का (लेते हैं)। '**(भावहिंसा) भावहिंसा भी (न अवतरी)...**' अर्थात् उत्पन्न नहीं होती। उत्पन्न नहीं होता-यहाँ तो ऐसा कहते हैं। '**न अवतरी...**' अन्तर में इतनी राग रहित भाव-अहिंसा दशा हुई है और इसलिए वह हिंसा का भाव वहाँ उत्पन्न होता ही नहीं। इसे पहला महाव्रत-अहिंसाव्रत कहा जाता है।

मुमुक्षु :- दोनों का है।

उत्तर :- हाँ, दोनों है न। द्रव्यहिंसा मिटी और भावहिंसा गयी तब, ऐसा।

'**उन मुनियों का जरा भी झूठ नहीं होता...**' जरा भी झूठ नहीं होता। प्राण जाए तो भी असत्य नहीं बोलते। नव-नव कोटि से-मन, वचन और काया तथा करना, कराना, अनुमोदना। वे तो वीतरागी मस्त मुनि जंगल में रहते हों, वनवास में, सिंह की तरह अन्दर आत्मा में गर्जते हैं। वह सिंह बाहर में गर्जता है, ये अन्दरमें गर्जते हैं। आनन्द में लवलीन... उन्हें जरा भी झूठ बोलने का मन, वचन और काया से, करना, कराना, अनुमोदन नहीं होता। यह दूसरा महाव्रत हो गया।

झूठ नहीं होती, इसलिए दूसरा महाव्रत, ऐसा।

'(जल) अर्थात् पानी और (मृण) अर्थात् मिट्टी भी दिये बिना ग्रहण नहीं करते...' अचित्त निर्दोष पानी और मिट्टी अचित, यह भी दिये बिना नहीं लेते। समझ में आया ? शरीर में से कफ निकला (हो), सुखी धूल होती है न ? अज्ञानियों ने मिट्टी डाली हो। पानी और मिट्टी भी दिये बिना ग्रहण नहीं करते-यह तीसरा अचौर्यमहाव्रत है, अचौर्यमहाव्रत।

'तथा (अठदशसहस) अठारह हजार प्रकार के शीर को-ब्रह्मचर्य को धारण करके...' अठारह हजार प्रकार के ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं। आहा..हा... ! अठदशसहस, लो ! हमेशा, यह ब्रह्मचर्य धारण करके नित्य **'(चिद्ब्रह्म) चैतन्य स्वरूप आत्मा में लीन रहते हैं।'** इस शुद्धोपयोग में अधिक मुख्य तो एकत्व है।

मुमुक्षु :- अठारह हजार ?

उत्तर :- ये सब ब्रह्मचर्य के प्रकार हैं, बहुत प्रकार हैं, भेद हैं। क्रोध से, मान से, माया, लोभ, मन्दराग.. पूर्ण ऊपर होता है। समझ में आया ? यह उसमें लिखा है-अठारह हजार.. शिलांग रस धारा नहीं आता ? ऐ..ई.. ! पाँचवे 'श्रवणसूत्र' में शब्द आता है। अर्थ का पता नहीं पड़ता, परन्तु इसे कण्ठस्थ कहाँ से (होवे) ? अठारहसहस शिलांगत धारा, अक्षय आया चरिता। यह पाँचवा 'श्रवणसूत्र' तुम्हें कण्ठस्थ नहीं, इन सबको बहुत-सों को कण्ठस्थ होता है। सम्प्रदाय में नहीं ? स्थानकवासी में आता है। स्थानकवासी मे कण्ठस्थ होता है। स्थानकवासी में बहुत-सों को कण्ठस्थ है। एक 'दरियापरी' के अतिरिक्त सब को कण्ठस्थ होगा। तुमने किया है या नहीं ? यह किया था, अब भूल गये होंगे। ब्रह्मचर्य के अठारह हजार प्रकार हैं। उन्हें धारण करके चैतन्यस्वरूप आत्मा में लीन रहे, उन्हें मुनि कहते हैं। ऐसी मुनिपने की भावना, सम्यग्दृष्टि को अनुभव बढाने के लिए बारम्बार ऐसी भावना करना। भावार्थ में विशेष कहेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)